कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

कालिदास

शिवदत्त शास्त्री 'श्रीश'

कालिदास

(एक कल्पना-प्रधान गीति-काव्य)
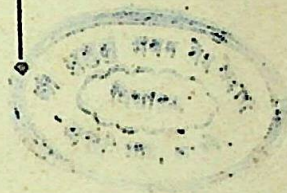
ईशदत्त शास्त्री 'श्रीश'
साहित्यदर्शनाचार्य, साहित्यरत्न

प्रथम-दर्शन

मूल्य
एक रुपया

प्रकाशक
देवकुमार मिश्र,
ग्रन्थमाला-कार्यालय, पटना

मुद्रक
विश्वनाथप्रसाद
ज्ञानमण्डल यन्त्रालय, काशी

प्रकाशकीय

हिन्दी-काव्य-रसिकों के सामने 'कालिदास' नामक मर्म-मधुर काव्य को प्रस्तुत करते हुए, हम हर्ष का अनुभव कर रहे हैं। इसके प्रणेता हिन्दी-संस्कृत के सुप्रसिद्ध विद्वान्, धारावाही वक्ता एवं प्रतिभाशाली कवि पं० ईशदत्त शास्त्री 'श्रीश' साहित्य-दर्शनाचार्य हैं। रचना छोटी होने पर भी कवि के कालिदास-सम्बन्धी सरस-अध्ययन का पूर्ण प्रमाण देती है।

भारतीय-वाङ्मय के माने हुए शास्त्रज्ञ, आचार्य पं० केशवप्रसाद मिश्र (अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, हिन्दू-विश्व-विद्यालय, काशी) ने 'आमुख' लिखकर और प्रकारान्तर से उसमें काव्य की कलात्मक आलोचना कर 'सोने में सुगन्ध' का काम कर दिया है, हम उनकी इस कृपा के आभारी हैं।

हमें विश्वास है, हमारा यह नव-प्रकाशन कालिदास-साहित्य-सौन्दर्य के अन्तर्दर्शन में रसज्ञ पाठकों का वस्तुतः सहायक होगा।

—देवकुमार मिश्र

आमुख

क्रान्तदर्शी वैदिक कवियों ने सच्चिदानन्द की सृष्टि के प्रत्येक कण में उसकी सत्ता और सौष्ठव की, उसकी चेतनता और ज्ञान की, उसकी आनन्दरूपता और मोद की अनुभूति पाकर जिस प्रकार यह कह दिया था कि—

'तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्'

(उसे रचकर वह उसी में प्रवेश कर गया) कुछ-कुछ उसी प्रकार की बातें 'कालिदास' के रचयिता ने भारत की संस्कृति और शिष्टता के प्रमुख गायक कालिदास की सृष्टि में कालिदास को देखकर कही हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि उद्यमान कवि ईशदत्त ने बड़ी भावुकता और सरसता से कालिदास की रचना का परिशीलन किया है, स्थान-स्थान पर उन्हीं की अमरवाणी से संकलित उज्ज्वल पदों का प्रयोग करके उनकी वाग्धारा के भावशीकरों से पाठक के हृदय को आप्यायित करने का स्तुत्य प्रयत्न भी किया है, कहीं-कहीं मूल-कृति के आस्वाद से पुलकित होकर स्वयं भी उसी रंग में गा उठे हैं!

श्री ईशदत्त का काव्यप्रवाह मुझे नवोद्गत उस पहाड़ी झरने के समान प्रतीत होता है, जो अभी स्वच्छन्द गति के लिये अपना मार्ग ठीक कर रहा हो, कहीं रोड़ों के बीच अटकता, कहीं सरल पथ पर चलता !

कालिदास की इस अभिवन्दना में यदि अ-कालिदासीय प्रतीकों या अप्रस्तुतों से काम न लिया गया होता तो और अच्छा होता ।

इस काव्य के पाठ से उत्साहित होकर यदि कुछ भी हिन्दी-पाठक कालिदास की अक्षय कृतियों के रसास्वादन की ओर उन्मुख हों—जिसकी संभावना असंभव नहीं है—तो मैं श्री ईशदत्त की इस रचना का परम साफल्य मानूँगा।
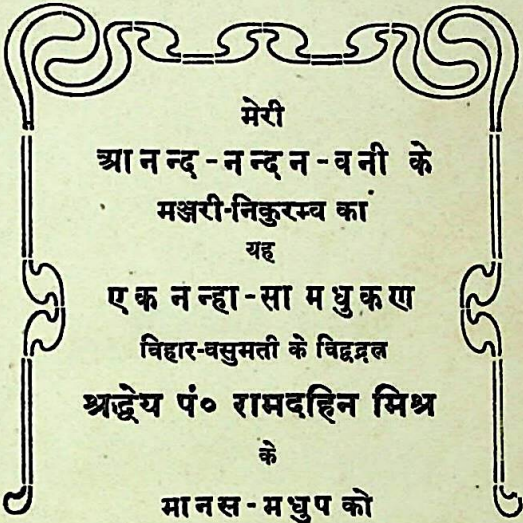
२१–२–४४ —केशवप्रसाद मिश्र
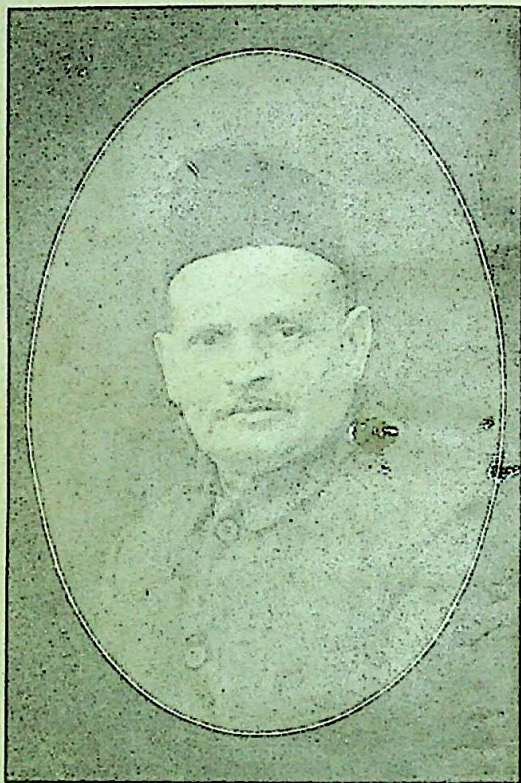
पं० रामदहिन मिश्र

मेरी

आनन्द-नन्दन-वनी के

मञ्जरी-निकुरम्ब का

यह

एक नन्हा-सा मधुकण

विहार-वसुमती के विद्वद्रत्न

श्रद्धेय पं० रामदहिन मिश्र

के

मानस-मधुप को

मुग्ध करता रहे

कालिदास

कालिदास

कौन है रंगीन भावों के
नशे में झूमता सा,
कौन रसवन्ती कला के
मधु-अधर को चूमता सा,
कौन कवि इन नील-जलदों
को 'कुटज' का अर्घ्य देकर,
आज भी है कल्पना के–
'रामगिरि' पर घूमता सा !

कालिदास

कौन 'मालविका'-कलित कटि–
किंकिणी में बोलता है,
कौन सरल 'प्रियंवदा' के
अधर पर मधु तोलता है,
कौन है जो शशि-कला सी
'उर्वशी' के इंगितों पर–
रस-पिपासा को बुझाने–
के लिये ही डोलता है !

कालिदास

कौन अपनी तूलिका से
चित्र 'अलका' का सजाता,
प्रान भर कर वसुमती में
कौन नभ में मुस्किराता !
स्वप्न में आकर प्रिया की
नींद चुपके से चुराकर—
कौन आशा से भरा
'सन्देश' देकर है रुलाता !

कालिदास

भर रहा है कौन रे–
'दुष्यन्त' में खिलती जवानी !
और सुमुखि 'शकुन्तला' के
रूप पर अभिरूप पानी !
शान्त आश्रम के उटज में
बैठ करुणा कण्ठ में भर,
कह रहा संयोग और
वियोग की स्वर्णिम कहानी !!

कालिदास

ईख की छाया तले
लेटी, (निरखती धान्य-रंजन)
ग्राम - बाला के दृगों में
कौन भरता मंजु-अंजन !
कौन करता चमचमाहट
भर चटुल सौदामिनी में
मिलन - पथ में रुक रही - सी
मानिनी का मान - भंजन !

:

कालिदास

वीचि का सौन्दर्य बनकर
कौन 'शिप्रा' में समाया,
मालवा को आह ! किसने
सत्य - शिव - सुन्दर बनाया,
छन रही अमराइयों की
चाँदनी में स्वर भिगोकर—
किस हृदय ने दर्द भरकर—
मर्म्मवेधी गान गाया !

कालिदास

कौन ऊषा के कपोलों
में लजीला राग भरता,
कौन सन्ध्या - सुन्दरी की
नित सुहानी माँग भरता ?
कौन हिम की तलहटी में
हँस रही नग - नन्दिनी के
मृदुल पगतल पर स्वयं बन
ललित लाक्षा - राग झरता !

कालिदास

सो चुकी थी आदिकवि के
कण्ठ की जब पुण्य - धारा,
और रस - गिरि - निर्झरी जब
खो चुकी थी सब सहारा,
ले पिकी के बोल का
मनहर सुरीलापन अचानक—
किस सरस ने तब अरे
ममताभरे स्वर में पुकारा !

कालिदास

लग रही सूनी विना
किसके 'अवंन्ती' की अटारी ?
खोजती - सी है किसे
उद्यान की हरएक 'क्यारी' !
चोल दो शिप्रे ! तुम्हारे ही
पुलिन पर लेखनी ले
अश्रु आँखों में भरे, निशि
किस रसिक ने है गुजारी !!

कालिदास

वसुमती फूली - फली, हो—
उठा गगन - वितान सुन्दर,
हो उठा चंचल कमल में
प्रकृति का सम्मान सुन्दर,
मन्द - मधुरिम नव - पवन के
मिस निकुंजों में निरन्तर
लो सुनो, कोई सुनाता है
हिमालय - गान सुन्दर !!

कालिदास

आ रहा रवि का कनक - रथ
सृष्टि है मंगल मनाती,
चन्द्र मौन हुए, चहक कर
गा रहे हैं खग प्रभाती,
ओढ़ चादर लहरियों की
बैठ 'शिप्रा' की तटी पर—
लो सुनो, जल की तरुणिमा
मधुर शहनाई बजाती !

कालिदास

डालियाँ झूमीं, धरा पर
फूल का अम्बार छाया,
फूल के अम्बार पर फिर
गुंजरित अलि-पुंज छाया,
चहचहाहट से भरा वन
शुक - पिकों के कण्ठ फूटे,
प्रकृति ने खोया हुआ
अपना ललित संसार पाया !

कालिदास

यामिनी का लोल - गोल
कपोल - कुण्डल खो गया, लो,
प्रेम प्राची का अमित अनमोल
रवि पर हो गया, लो,
बुझ गये वे रति - प्रदीप
अभी-अभी जो जग रहे थे—
हो उठे द्रुम - दल चपल,
नभ भूमि-वक्ष भिगो गया, लो !

कालिदास

झाड़ियाँ झहरीं, झुरमुटों के
गहन - घन कुंज बोले,
मृदुल - दल 'चलदल' चले
या प्रकृति के डोले हिंडोले !
जग उठीं जग में सहस्र–
सहस्र किरणों की शिखायें,
ढूँढ़ने से रवि लगे अग-
जग उषा के नाम को ले !

कालिदास

है शरद की चाँदनी,
आकर यहीं विश्राम पाती,
है वसन्त-पिकी यहीं स्वर
की प्रगति अभिराम पाती,
है यहीं नभ तानता नक्षत्र-
चन्द्रिम छत्र अपना,
ग्रीष्म की गरिमा यहीं पर
वासना उद्दाम पाती !

कालिदास

है यही, भरती मधुरिमा
'पुष्पधन्वा' के शरों में !
है यही, भरती बसन्ती
रंग कुंकुम-केशरों में !
है यही, भरती प्रणय से
प्रणय परियों के परों में,
है यही, भरती मधुर धुनि
'मंजुघोषा' के स्वरों में !!

कालिदास

है यहीं के मधुर मदन-महो–
त्सवों की स्मृति निराली,
आज भी जो हृदय–पट पर
बुन रही है भाव-जाली,
भास ने उदयन-कथा के
कोविदों के पास जाकर–
है यहीं रचना रची वह
'स्व प्न—वा स व द त्त' वाली ;

कालिदास

भाव-अंकन के लिये कवि–
तूलिका मिलती यहीं पर !
मधुप-अंचल को मरन्द–
मधूलिका मिलती यहीं पर !
सहमती सी, सिहरती सी–
भी जवानी को जवानी
(छू रही सी हृदय को) छवि–
मूलिका मिलती यहीं पर !

कालिदास

स्वर्ग की सम्मोहिनी सुषमा
रमी है यदि कहीं पर,
नीलिमा नभ की उतर कर
आ गई है यदि मही पर,
तो सुनो, लो कह रही
'शिप्रा' निरन्तर लहरियों से—
'है यहीं पर ! है यहीं पर !!
है यहीं पर !! है यहीं पर !!'

गन्ध-भार-झुकी हुई—
अलिभर-नमित शेफालिका सी !
शान्त सघन निशीथ में
झरती कुहक-कुल-जालिका सी !
आम्र-कोपल सी रुचिर-रुचि !
शिंजिनी-सी जन-मनोहर !
मंजु- मौक्तिक-माल सी !
चल-चपल कानन-बालिका सी !

कालिदास

स्वर्ग की रंगीन इठलाती
हुई तितली परी सी !
शिशिर-रवि की रश्मि-सी,
रस-सिद्ध बाला पारसी सी !
सरल-उज्ज्वल सरस-सुन्दर
नागरी नगरी 'अवन्ती'—
मुग्ध अपने आप में
यह प्रकृति-छवि की आरसी सी !

कालिदास

खिल रही मकरन्द-मेदुर
प्रात-पंकज-पंखड़ी सी !
दूब की फुनगी चमाचम
ओस-मोती से जड़ी सी !
भाल पर वेंदी दिये
पहिने हुए सतरंग चुनरी
शिशु 'उषा', मुँह खोल, प्राची--
द्वार पर आकर खड़ी सी !

कालिदास

साथ ज्योतिर्लिंग 'शंकर' के
यहीं रमती 'सती' है,
साथ रम्य रसाल के
रमती यहीं व्रतती-तती है,
वसुमती की मध्य कटि पर
अनुरणित मणि-किंकिणी सी
देख इसकी छवि विनत
'अलका' तथा 'अमरावती' है !

कालिदास

आदि-कवि 'वाल्मीकि' ने
इसकी कभी की आरती है,
मुग्ध इसकी मधुर छवि पर
'व्यास' की भी भारती है,
है यही गुरुभूमि जो
(प्रभु 'कृष्ण' और दरिद्र ब्राह्मण
श्री 'सुदामा' के) मिलन का
चारु-चित्र उतारती है !

कालिदास

सोहती मृदु मसृण तन पर
उपवनी सारी वसन्ती,
स्वर्ग से उतरी परी सी
मध्य भूतल पर लसन्ती,
अनिल-चंचल-सलिल शिप्रा
में विहरती सी निरन्तर–
चर-अचर-मन मोहती
सचमुच यही सुन्दर 'अवन्ती' !

कालिदास

था यहीं श्री और शुभ्र
सरस्वती का अंग-संगम !
मालवाऽऽखण्डल महाविजयी
म हा भू पा ल 'विक्रम' !
वसुमती 'राजन्वती' जिससे
हुई, जिसका महा असि
काटकर था फेंक देता
दूर विद्युद् - वेग—विभ्रम !

कालिदास

युग—युगों का वह युगन्धर
आर्य - मर्यादा - उपासक,
समर - दुर्धर प्रतिभटों का
अप्रतिद्वन्दी विनाशक,
वह असह्य - प्रताप - शोषित—
शत्रु - पंक, उदग्र - तेजा,
सिंह सा, उत्तप्त रवि सा,
अति प्रबल दुर्धर्ष शासक !

कालिदास

चल रहा अब भी यहाँ
जिसका अमर राष्ट्रीय साका,
और आँका जा न सकता
मूल्य जिसकी वीरता का,
वह 'महेन्द्रादित्य' का
स्मारक अचल 'रणधीर बाँका,
आज भी फहरा रही
जिसकी गगन में जयपताका !

कालिदास

छीन ली जिसने अचलता
तोड़ पत्थर का कलेजा,
क्रुद्ध सिंहों की दहाड़ों से
हृदय जिसने सहेजा !
हहरते तूफान सा
बढ़ना सदा जो जानता था,
दे चुका था सार जिसको
तीक्ष्ण अपना तेज नेजा !

कालिदास

काल सा फहरा दिया
पिंगल जटा का जाल जिसने,
की न फिर नीचे उठाकर
प्रखरतर करवाल जिसने !
भूमि तो यह लाल ही थी
तप्त अरि-उर-शोणनद से
कर दिया नभ का कलेजा
भी टहाटह लाल जिसने !

कालिदास

धधकते अंगार सा था
क्रोध परम प्रचण्ड जिसका,
था सदा उद्दण्ड शक्त्यु--
स्थान में भुजदण्ड जिसका !
दश दिगन्तों की दशाओं का
प्रभुत्व लिये हुये, इस-
लोक का रक्षक बना था
कर-कलित कोदण्ड जिसका !

कालिदास

लौह थी, चट्टान थी,
जिसकी कवच-सन्नद्ध छाती !
मृत्यु को देती चुनौती
धाक जिसकी वीरता की,
आज भी अंकित अमिट
इतिहास के कटिबन्ध पर है,
क्षुब्ध प्रलय-समुद्र सी
असि-धार जिसकी लपलपाती !

कालिदास

देश का था देश सुनता
शक्तिमय आदेश जिसका,
तीव्र झञ्झावात सा था
फैलता सन्देश जिसका,
कायरों की नाड़ियाँ थीं
नाचतीं, उत्साह ऐसा-
भर दिया करता भयानक
था समर - निर्देश जिसका !

कालिदास

अडिग साहसशालिनी सेना-
पटल की प्रेष्ठता से,
शैल-शिखरों सी समुन्नत
शस्त्र-संहत श्रेष्ठता से,
टिड्डियों सी उमड़ती आती
कुटिल शक-टोलियों को-
खण्ड-खण्ड किया अरे !
जिसने अखण्डित ज्येष्ठता से !

कालिदास

मुकुट-मण्डित मौलि था
थे नयन भी कर्णान्त-गामी,
थे अचल परिणद्ध कन्धर
मद भरे जग-विजय-कामी,
क्या जलों का, क्या थलों का
और क्या गिरि-गह्वरों का
वह विजेता ! वह सुरक्षक !
वह परम आदर्श स्वामी !

कालिदास

ढह रहा था जब हमारा दुर्ग

संस्कृति का अ-नामा,

तब अभय उस सिंह-

सैनिक-राज ने निज खड्ग थामा,

आज भी वह नाचता-सा

नित निरन्तर नेत्र में है,

'मा ल वे न्द्र' निसर्ग-निर्भय

'वि क्र मा दि त्यै क' नामा !

चौ

कालिदास

आज राजसभा कहाँ ! वह
प्रेम का शासन कहाँ है !
आज कविता - क्षेत्र में
नवरत्न-अनुशासन कहाँ है !
वह मुकुट ! वह खड्ग ! वह
रण-वाहिनी ! वह मालवापति !
और उसका छत्र-चामर-
जटित सिंहासन कहाँ है !

कालिदास

क्या कहा, स्वर्णिम अवन्ती
के गगन के दीप्त तारे,
हृदय से भी अधिक कोमल,
प्रान से भी अधिक प्यारे,
है यहीं सोये हुए चुप-
चाप ओढ़े शान्ति-चादर
विश्व के अभिमान शाश्वत
और 'कविकुलगुरु' हमारे !!

कालिदास

है यहीं पर, ओढ अंचल
भग्न - भूस्तर का, हमारे
आह, ज्योतिर्धर धरणि के
विश्व - कवि नवरत्न सारे,
है शपथ, कोई तनिक, बस
सामने आकर बताये--
सो रहे क्या सच यहीं
'वि द्यो त्त मा' के प्राण-प्यारे !

कालिदास

विजन वन के फूल सा वह
कवि यहाँ मुरझा रहा है !
शोक ! कोई भी जगाने तक
न उसको आ रहा है !
है कहीं न समाधि, उसका
चिह्न कोई भी नहीं है,
और कोई भी न आ
दो चार अश्रु गिरा रहा है !!

कालिदास

सिसकियाँ-सी ले रहा कोई
प्रलय-निक्वाण में है,
घाव को भर सा रहा
कोई यहाँ के प्राण में है,
भग्न-गृह की सन्धि से
कोई यहाँ पर झाँकता है!
चाहता कोई निकलना,
फँस गया पाषाण में है!!

कालिदास

हे गगन ! संकेत करदो
विश्व का प्यारा कहाँ है !
बोल दो, मालव-जननि के
नयन का तारा कहाँ है !
छोड़ क्षण भर मौनिमा
शिप्रे ! अतल-जल में मिला, तो
दे बता, कवि से मिलित-तनु
तव तरल धारा कहाँ है !

कालिदास

बन्द है क्यों युग-युगों से
देव ! अपना द्वार खोलो,
लो, सुमन-सुकुमार जनके
हृदय का मधुभार तोलो,
चर-अचर-संसृति यहाँ सन्नद्ध
स्वागत—हेतु है कवि !
आ रहे किस ओर से, हे
पुण्य-पारावार ! बोलो;

कालिदास

हो छिपे यदि तरु-तृणों में
क्यों नहीं फिर हिल रहे हो !
हो छिपे यदि कुड्मलों में
क्यों नहीं फिर खिल रहे हो, !
हो छिपे यदि वन अनन्त,
'अनन्त-रत्न-प्रभव' गिरि में
आह ! अनुनय-विनय सुनकर
क्यों न गल तिल तिल रहे हो !!

कालिदास

एक वार कहो कि विक्रम
वीर, 'दीपक' राग गा दें,
खंडहरों में सुप्त सिंहों को
अचानक आ जगा दें,
देश उनका है दलित, है
धर्म उनका हत धरा में—
एक वार उठें सुकृत की
वेलि फिर घर-घर लगा दें!

कालिदास

एक वार पुनः दिखाओ
दिव्य रस-अवदान अपना,
एक वार पुनः कराओ
दिव्य-दर्शन-दान अपना,
एक वार पुनः पधारो,
हे हमारे गर्व-गायक !
एक वार पुनः सुनाओ
कवि ! हिमालय-गान अपना !

कालिदास

एक बार भरो सुधारस
रिक्त हैं ये हृदय-प्याले–
भर उठें, पीकर जिन्हें
फिर जी उठें मृत प्रान वाले !
एक बार उगो किरन-सा
एक बार खिलो सुमन-सा
एक बार हंसो मधुर फिर
हे 'मधुर मुसकान वाले' !

कालिदास

आज 'श्रुति-महती' पुनः है
भरतभूमि तुम्हें बुलाती !
आज 'दशपुर की दुलारी'
आरती तुमको दिखाती !
आज तन कर ताकते हैं
तरुण 'तालतमाल' तुमको
एक बार पुनः जगो कवि !
भारती तुमको जगाती

कालिदास

कर रहा मन 'कण्व' की छवि
करुण-रस-अनुरूप देखें,
कर रहा मन विश्वजित्
'रघु' सा अकिंचन भूप देखें,
कर रहा मन आज रह-रह
'गाढ़ - निद्रित ओ महाकवि' !
हम तुम्हारा कवि ! किशोरी
प्रकृति का प्रिय रूप देखें !

कालिदास

राष्ट्र-रंजन ! आज क्यों तुम
धूलिधूसर हो रहे हो,
कुछ पता लगता नहीं
तुम जग रहे या सो रहे हो !
हे मृदुल ! तुम बन गये क्यों
यों कठिन 'पाषाणप्राणी'
हास के बदले अरे ! तुम
अश्रु से मुँह धो रहे हो !

कालिदास

मैं तुम्हें आया जगाने
आह मेरे प्रान ! जागो,
इस धरा के इस गगन के
दीप्त स्वर्ण-विहान ! जागो,
चटुल शिप्रा की लहरियों
की हँसी उन्मुक्त लेकर
'धूम-ज्योतिः - सलिल- मरुताम्'
मदिर - मर्मर - गान ! जागो !

कालिदास

आज भी तो सुभग लगता
सलिल - अवगाहन यहाँ पर,
आज भी तो कमल करता
सुरभि - संवाहन यहाँ पर,
आज भी तो रसिक दम्पति
ललित - विभ्रम-बन्ध में बंध,
नित्य करते पुलक भर कर
प्रणय - आवाहन यहाँ पर !

कालिदास

आज भी गृह - मध्य हैं
'जलयंत्र' शत-शत-धार चलते,
आज भी निशि में शशी के
कल - किरण - परिवार चलते,
आज भी सुकुमारियां
चीनांशुकों में झिलमिलातीं !
आज भी तो नागरिक घर
हृदय पर 'घनसार' चलते !

कालिदास

आज भी घिरतीं घटायें
मन्द्र-ध्वनि-नन्दित गगन में,
पीत विद्युत् आज भी है
विहरती नव - नील - घन में,
नाचते शिखि, हंस - वंश-
वतंस मानस ओर उड़ते,
'पी कहाँ' की पीर भर देते—
पपीहे सुतनु - मन में !

कालिदास

'ओरियों' से देखकर
गिरता टपाटप दिव्य पानी,
नाच उठती आज भी तो–
'झोपड़ी' की 'राजरानी'!
आज भी तालाब में
उत्ताल पानी की सतह पर–
बूँद का रव 'छू-म-छ-न-न-न्'
सुख न पाता कौन प्रानी!

कालिदास

आज भी ले अरुण - तरुण -

तरणि-किरण का रंग लजीला !

सरल - तरल 'शरद्' सदा

आती यहाँ ले ललित - लीला !

लक्ष - लक्ष वलक्ष - वक की

पाँति है चलती, अभी तो—

कास - कुसुमों में स्वयं

होती प्रकृति है हास-शीला !!

कालिदास

आज भी तो शिशिर-सीकर-
विंदु है राका बिछाती,
शालि होते फलभरा नत,
कमलिनी मंगल मनाती,
आज भी लख स्वस्थ गो-
कुल से सुशोभित ग्राम-सीमा
कौन है जिसके नयन में
है न शीतलता समाती !

कालिदास

आज भी तो तरु-तृणों पर
इस तरह हिम-पात होता,
सर्वथा विधि - सृष्टि ही का
रूप जो अवदात होता,
आज भी ले आरसी
तरुणी निरखती है नख-क्षत
जब कि बाला तप लिये
कुछ सजग झिलमिल प्रात होता !

कालिदास

आज भी है फूल की
डाली सजाती नित्य श्यामा,
युवतियाँ भी आज करतीं
अलक की रचना ललामा !
मिलन - वेला में हृदय में
हृदय भर, घूँघट हटाकर-
आज भी मन मोहती
बन काम-रस-अनुबिद्ध वामा !

कालिदास

आज भी रवि - रश्मियाँ
प्रतिदिन तुहिन से तन कँपातीं,
शीघ्र आतीं, शीघ्र जातीं,
छाँह सी छिपतीं - छिपातीं,
आज भी ताम्बूल की धर कर
अरुणिमा निज - अधर पर-
प्रिय - रचित शय्यागृहों में
रमणियाँ सप्रेम जातीं !

कालिदास

आज भी रखती अनूठा
बाल - ललना हास अपना,
है बनाती वदन - द्युति से—
इन्दु को भी दास अपना,
आज भी सीमन्तिनी
शृंगार - वेला में सुरभिमय—
अगुरु - धूमों से सुखाती
कुटिल कुन्तल - पाश अपना !

कालिदास

आज भी सारस - समज
मद्कल-कलित कलनाद करता,
आज भी तो स्फुटित कमला-
मोद विपुल - विषाद हरता,
आज भी तो वात शिप्रा
का मधुर प्रियतम - सदृश ही
चाटुकार बना 'किसी' का
दूर रति - अवसाद करता !

कालिदास

आज भी धरती अनन्त

वसन्त-पुष्पा-भरण धरती,

और पल्लविनी लता

तरु-सङ्ग है भुज-बन्ध करती,

आज भी वन-वीथियों में

विवृत-जघना प्रकृति की छवि-

स्वाद-रसिकों की पलक पर

बन परम आनन्द झरती !

कालिदास

आज भी लाली हँसा करती
प ला श-व ने अनन्ते !
और परिमल-पवन बहता
है सदा 'सकले दिगन्ते' !
किन्तु किसकी रस-छलाछल
लेखनी है ? नोंक जिसकी
नाच कर लिख दे कि
'सर्वं प्रिये चारुतरं वसन्ते' !

कालिदास

तुम जगे, वाणी जगी,
वीणा जगी, फिर झनझनाकर,
स्वर जगे, लय ताल जागे,
जग गया, जग अनमनाकर,
स्वर्ग का सन्देश भर कर-
कौन सा संगीत गाया !
वन गया उन्नत मना
जन-जन यहाँ जीवन मनाकर !

कालिदास

कवि ! तुम्हीं ने मधु-कणों से
काव्य-नन्दन-वन बनाये,
दोष - पतझर को मिटाने
स्वयं-रूप वसन्त आये,
हिल उठीं रस की टहनियाँ,
छन्द के मकरंद छाये,
ओ अमर कोकिल ! तुम्हीं ने
कण्ठ भर तब गीत गाये !

कालिदास

रिक्त था भाषा-कलश
भर दी अमृत की धार तुमने,
दीप्त प्राणों का किया
साहित्य में संचार तुमने,
चिर-सनातन नित्य-नूतन
'हिम-महिम्नः-स्तोत्र' द्वारा-
ओ महाकवि ! मातृभू का
है किया श्रृंगार तुमने !

कालिदास

शक्ति-युग की साधना में
भर दिया हुँकार तुमने,
राष्ट्र की आराधना में
भर दिया अंगार तुमने,
बन सका दुर्धर्ष शक-
सम्राट् की बल-बाधना में
वीर विक्रम के भुजों में
वह भरी ललकार तुमने।

कालिदास

देवता साहित्य के, इस
देश के अभिमान हो तुम,
अमर-वाणी के क्षितिज के-
पार स्वर्ण-विहान हो तुम !!
प्रान हो निष्प्रान के,
आशा भरे वरदान हो तुम,
हो स्वयं उपमा तथा
उपमेय औ, उपमान हो तुम,

कालिदास

एक एक प्रवृत्तियों के
मूल को उकसा गये हो,
छवि-छटा वन रूप-रस की
आस-प्यास जगा गये हो,
एक कोने में पड़ी थी
बीन निःस्पन्दित हमारी
आह ? आकर झनझना कर
तार तार जगा गये हो !

घाव फिर करके नया,
ज्वाला नई सुलगा गये तुम !
पार पारा वार से कवि !
मोह-मन्त्र चला गये तुम,
सुन रहा संसार था निश्चेष्ट
औ, जाने कहाँ ! कब !
आह ! मौन-निशीथ में कवि !
दिव्य-गान सुना, गये तुम,

कालिदास

दीखती जिसमें चराचर-
सृष्टि वह संसार हो तुम,
दृष्टि के इस पार हो तुम,
दृष्टि के उस पार हो तुम,
बस रहे हो तुम नयन में
नयन का जल खार बनकर,
हँस रहे हो तुम पलक में
देव ! प्रतिपल प्यार हो तुम !

कालिदास

चन्द्र-किरणों ने तुम्हीं से
स्नेह-सिञ्चित हास पाया,
रंग-विरंगी तितलियों ने
मुक्त प्रतिपल लास पाया,
चातकी ने प्रिय-मिलन की
प्यास के बुझने लिये ही-
है तुम्हीं से 'पीउ' की रट
में निरन्तर वास पाया !

कालिदास

कवि ! तुम्हीं से विश्व ने है
सजग पुलकित प्रान पाया,
उदधि ने औ, गगन ने
जल-यान और विमान पाया,
कवि ! तुम्हीं से वसुमती ने
मान का वरदान पाया,
और अखिल 'अवन्तिका' ने
स्वर्ग का उपमान पाया !

कालिदास

कवि ! तुम्हारे बोल में
कवि ने प्रबुद्ध स्वदेश पाया,
और कविता ने सरल
सुन्दर समुज्ज्वल वेश पाया,
वेदना पाई नयन ने-
वेदना ने रुदन पाया-
रुदनशीला विरहिणी ने
मिलन का सन्देश पाया !

कालिदास

कवि ! तुम्हीं ने पुण्य-गीत
अतीत का पहले सुनाया !
युग - युगों से सुप्त तंन्त्री-
तार पहले झनझनाया !
कवि ! तुम्हीं ने गगन-वातायन-
विवर से झाँक करके
शान्त अन्तर-वृत्ति को
उन्मादमय पहले बनाया !

कालिदास

तुम चले कवि ! कनक-कङ्कण
में सुरभि-सम्भार लेकर !
तुम चले लघु-विन्दु में
कवि ! सिन्धु का व्यापार लेकर !
श्रुतियुगल में ढल, अमृत-
तलछट पिलाने के लिये ही-
तुम चले कवि ! सिद्ध-वीणा
का चढ़ाव उतार लेकर !

कालिदास

तुम चले श्रावण-जलद का
गरजता उन्माद लेकर,
तुम चले गिरि-निर्झरी के
स्रोत का कलनाद लेकर
विरह-मारी के हृदय-व्रण पर
मिलन—मरहम लगाने-
तुम चले कवि! प्रिय-मिलन का
अति मधुर संवाद लेकर!

कालिदास

दी तुम्हें नन्दन-सुमन ने
विहंस रस-कसमस जवानी,
दी तुम्हें मन्दाकिनी ने,
मुग्ध हो अपनी रवानी,
कल्प-तरु की टहनियों ने
दिया नर्म-विहार अपना,
हो गई बन्दी तुम्हारे
बोल में सानन्द बानी !

कालिदास

सुतनु, श्यामा, शिखरि-दशना,
मोद-अलसित-गामिनी सी,
चकित हरिणी-प्रेक्षणा सी,
कनक-रुचि सौदामिनी सी,
विरह विषमय में तुम्हारे
दिवस-गणना-तत्परा कवि !
याद आती है तुम्हें
कोई कहो निज-कामिनी सी !

कालिदास

हाथ में लीला-कमल,
कुरवक-सुसज्जित-अलक-जाला,
लोध्ररज-पाण्डुर-मुख-श्री,
कर्णलम्बि–शिरीष–माला,
कम्बु-ग्रीवा, पीन-पुष्ट-
पयोधरा, कृश-कटि, चलितभ्रू,
शशिमुखी-सी याद आती
है तुम्हें क्या ग्राम-बाला !

कालिदास

पीत-वसना, सुन्दरी,
सिन्दूर-भूषित-भाल, मृदु-तन,
चटक चोली से कसा
जिसके हृदय का चटुल-कंपन,
आह ! उस बिछुड़ी हुई की
सुध सताती क्या न तुमको !
था तुम्हें प्रिय प्रान से भी
जिस प्रिया का मन्द-विहसन !

कालिदास

भ्रू-विलासों से अपरिचित
किन्तु खंजन-मान-मोचन,
पूर्ण पाटल-पुष्प से,
विकसित, चपल, रतनार, रोचन!
स्मर-निमन्त्रण-पत्र जैसे
द्रुत–विलम्बित–चाल–चञ्चल,
ध्यान में आते 'किसी' के
क्या न तुमको लोल-लोचन!

कालिदास

कवि ! कहो क्यों भूलते,

श्यामायमाना वह वनानी

भूलते 'सैषा स्थली' क्यों

भूलते उसकी कहानी !

भूलते क्यों पवन मलयज—

वृक्ष-कम्पित-पुष्प-गन्धी !

भूलते क्यों हो विरहिणी की

करुण-रस-सिद्ध वानी !

कालिदास

था जहां दिन है वहां निशि,
थी जहाँ द्युति है वहाँ तम,
दुःख है सुख की स्थली में,
है 'प्रमा' के स्थान में भ्रम,
मृत्यु-विभ्रम-मग्न होकर
जीव करता व्यर्थ का श्रम,
है किसी में भी न विक्रम,
है कहीं कोई नहीं क्रम;

कालिदास

हैं कहाँ 'क्रीडा-शिखी'
था नृत्य जिनका हृदय-हर्षण !
हैं कहाँ 'गृह-वापियां'
था ललित जिनका वीचि-घर्षण !
अङ्ग-अङ्ग मृदङ्ग-धीर-ध्वनि-
भरी तटिनी कहाँ है !
हैं कहाँ वे 'मेघ' जो
करते मधुर सन्देश-वर्षण !

कालिदास

थे निशा में भी जहाँ
अभिसार-नूपुर झनझनाते !
थे जहाँ प्रासाद जलधर–
जाल से बाहें मिलाते, !
हा ! वहीं पर आज 'मूक–
उलूक' है 'मंगल मनाते'
और झुण्ड खड़े शृगालों–
के भयानक रव सुनाते !

जो कभी 'वरवौकसारा'
और थी 'सौराज्य'-मग्ना,
जो कभी थी आह ! लोकोत्तर-
ललित—लावण्य—लग्ना,
जन्मभू तव है 'प्रपन्ना'
आज वह 'करुणामवस्थाम्'
विलुलिता, वन्दी, विमुकुटा
दीन दीना और नग्ना !!

कालिदास

कवि ! पुनः कर दो इसे
रस--देवता की राजधानी,
हो उठे फिर मातृभू
गन्धर्व-नगरी सी सुहानी !
सुप्त जागें, हंसे जागृत,
हास-शील हृदय खिलायें,
मुक्त हो गूंजे दिगन्तों
में युगों की बन्द वानी !

कालिदास

पुलक-पुष्प, विचार-अक्षत
भाव-दीपक, छन्द-चन्दन,
हैं लिये, औ कर रहे हम
नम्र हो तव चरण-वन्दन,
तुम जहाँ भी हो, वहीं पर
हे हमारे इष्ट-दैवत !
मधुर अभिनन्दन हमारा
हो तुम्हारा हृदय-नन्दन !!

कालिदास

प्रथम-प्रथम वसन्त-धीर
समीर के अभिसार ! वन्दे
प्रणय-परिणत-लालसा के
ललित गुम्फनकार ! वन्दे
'देहि द्वारं सखि ! 'अनावृत-तम-
कपाटं' के अनन्तर
'अस्ति कश्चिद् वाग्विशेषः'
के प्रणय-उपचार ! वन्दे

कालिदास

अमृत-अम्बुधि-तल-विनिस्सृत-

मूर्त-रस-शृंगार ! वन्दे

तप्त-सहृदय-हृदय-हर्षण-

वहल-चन्दन-सार ! वन्दे

ताल-चञ्चल 'कच्छपी' के

अनुरणन-झंकार ! वन्दे

हे अमृत के पुत्र ! संस्कृति के

अटल आधार ! वन्दे

कालिदास

चारु-रोचिर्निचय-रोचित-
रामणीयक-सार ! वन्दे
नील-नलिन-निलीन-नन्दन-
नीप-निभृत-निगार ! वन्दे
पुण्य-पंकज-पूर्ण-प्रतिभा-
प्रीत-पारावार ! वन्दे
मंजरी-मंजीर-मुखरित-
मुग्ध-मंजुल-मार ! वन्दे

कालिदास

वक्षपर भवभामिनी के
हार - 'ऋतुसंहार' ! वन्दे
आर्य - कुल - सम्भव कलाओं
के विवुध सुकुमार ! वन्दे
रम्यतम - 'रघुवंश' - वारिधि-
रत्न - उच्छलभार ! वन्दे
'मेघदूत' अभूत - रस की
सजल रिमझिमधार ! वन्दे

कालिदास

आर्ष - संस्कृति - साधना के
पूर्ण - प्रौढ़ - प्रयास ! वन्दे
युग - युगों से विश्व के
श्रद्धा - मधुर विश्वास ! वन्दे
कीर्ति - अग्नि - स्तम्भ के हे—
ज्वाल - जटिल प्रकाश ! वन्दे
हे कला के और जीवन के
सहज सहवास ! वन्दे

कालिदास

प्रणय के प्रहरी प्रतिष्ठित !

उछलते उल्लास ! वन्दे

देश, धर्म, समाज के

प्रत्यक्ष कर्माभ्यास ! वन्दे

नित्य नव-नव नव-रसों के

नवल नव-अवकास ! वन्दे

गरल - धारा - हत धरा में

हे सुधा - आवास ! वन्दे

कालिदास

मुग्ध - हृदय - कलापिनी - कल -

सजल - जलधर - लास ! वन्दे

मधुर - मधु - मद - मुखर - मान -

वती - कटाक्ष - विलास ! वन्दे

विप्रलम्भवती - हृदय - उत्थित -

विरह - निःश्वास ! वन्दे

बाल - ललना - नर्म - मर्म -

स्थल - मृदुल मधुहास ! वन्दे

कालिदास

ब्रह्म - विद्या - वल्लरी - विच्छित्ति-

विकच - विकास ! वन्दे

मधुमती गीर्वाणगी के

गर्व-गुरु उच्छ्वास ! वन्दे

कवि 'स्वयम्भू' के चमत्कृत-

काव्य सानुप्रास ! वन्दे

भाव-शंकर के चिरन्तन

शुचि-रुचिर कैलास ! वन्दे

कालिदास

अगम - अघमर्षण - अतीन्द्रिय-

आत्ममति - आवास ! वन्दे

भद्र-भावोद्भूत - भारत- भारती-

भव - भास ! वन्दे

राज - रजनी - रुचिर - रुचि-

रत - रोमहर्षण - रास ! वन्दे

लोक - लीला - लक्ष्म - ललित

ललित - लक्ष्मी - लास ! वन्दे

कालिदास

ऐतिहासिक - अन्ध - युग के
हे प्रसन्न प्रकाश ! वन्दे
तारिका - कवि - शेमुषी के
शरद् - शुभ्राकाश ! वन्दे
रस - करम्बित स्वप्न की
सीमन्तिनी के सहज, चिक्कण,
मसृण - घन घनसार - पंकिल
कुटिल कुन्तल - पाश ! वन्दे

कालिदास

मुग्ध बाल-सरस्वती के
सिद्ध हास-विलास! वन्दे
भावना-नन्दन-वनी के
हे अमर मधुमास! वन्दे
आदि कवि-कुल-गुरु! कला के
प्राणमय इतिहास! वन्दे
ज्ञान के विज्ञान के
अधिवास 'कालीदास'! वन्दे

ईशदत्त शास्त्री, 'श्रीश' का नवीन ग्रन्थ

सम्राट् विक्रमादित्य और उनके नवरत्न

भारतीय भाषाओं में अपने विषय का एकमात्र प्रामाणिक
प्राञ्जल-भाषा-निबद्ध, गवेषणाप्रधान,
सांस्कृतिक ग्रन्थरत्न !

यह ग्रंथ २६ अध्यायों में विस्तृत है, इसमें [illegible] वर्ष के अतीत २००० वर्षों के 'आग्नेय प्रतापी' सम्राट विक्रम के सम्बन्ध की सारी बातें पूर्ण ऊहापोह के अनन्तर प्रस्तुत की गई हैं तथा प्रतियोगी विदेशी तर्कों का संक्षिप्त किन्तु मार्मिक उत्तर दिया गया है। संक्षेप में, यह ग्रंथ लेखक के पुरातत्त्व-पाण्डित्य एवं साहित्य-समीक्षा का सम्यक् प्रतिनिधित्व करता है।

एक प्रति का मूल्य, दो रुपये

ग्रन्थमाला-कार्यालय बाँकीपुर, पटना